International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(6): 15-16

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(6): 15-16
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 13-07-2015
Accepted: 15-08-2015

वन्दना देवी
शोध कर्त्री
संस्कृत विभाग
विष्वविद्यालय षिमला–5

Correspondence
वन्दना देवी
शोध कर्त्री
संस्कृत विभाग
विष्वविद्यालय षिमला–5

हर्षवर्धन की कृतियों में नारी की समाज में स्थिति

वन्दना देवी

प्राचीन भारतीय समाज में नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान था। नारी को समाज का अभिन्न अंग माना गया था। उसे न केवल समान अधिकार ही प्राप्त थे बल्कि गृह सम्बन्धी अनेक कार्यों में उनका प्राधान्य था। ऋग्वेदकाल में नारी को 'गृहलक्ष्मी' का पद प्राप्त था। 'जायेदस्तम्' उसकी महत्ता को प्रदर्षित करती है अर्थात् जाया (पत्नी) ही घर है।[1] मनु भी इसी सिद्धान्त में विष्वास करते हैं कि जहाँ नारियों का आदर एवं सम्मान होता है वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ उनको अपमान एवम् अनादर की दृष्टि से देखा जाता है वहाँ सभी क्रियाएँ निष्फल सिद्ध होती है।[2] वैदिक काल से ही स्त्री षिक्षा का प्रचार था। उस समय स्त्रियाँ वेदाध्ययन करती थीं और मन्त्रों की रचयिता भी थी, घोषा नाम की ब्रह्मवादिनी ने दषम् मण्डल के 30वें एवं 40वें सूक्तों की रचना की है।[3] नारी को पुरुष के समान ही सषक्त तथा महत्त्वपूर्ण माना गया है। वह किसी भी तरह से पुरुष से कमजोर नहीं है।[4] महाभारत में भी नारी की विषिष्टता के सम्बन्ध में कहा गया है कि भार्या पुरुष का अर्द्धभाग है वह उसका सबसे उत्तम मित्र है, भार्या त्रिवर्ग का मूल है और संसार का सागर में तैरने के इच्छुक पुरुष के लिए वह ही प्रमुख साधन है।[5]

श्री हर्षदेवरचित नाटकों में नारी विषयक दृष्टिकोण अत्यधिक उदार एवं विषाल है। नारी को पुरुष के समान ही आदर और सम्मान दिया गया है। वह कठिन परिस्थितियों में भी पुरुष का पूर्ण सहयोग करती है। श्रीहर्ष ने नारी का स्त्री, पत्नी, माता, वधू , विधवा आदि अनेक रूपों में चित्रण किया है। कन्या समाज में आदर का पात्र थी। कन्याओं को पराई वस्तु माना जाता है जिसे किसी न किसी को समर्पित करना ही होता है। महाकवि कालिदास ने 'अभिज्ञानषाकुन्तल' में कन्या को पराई वस्तु माना है।[6] माता–पिता कन्या के विवाह के प्रति चिन्तित रहते हैं, क्योंकि इसके मूल में परकीयता तथा सामाजिक संस्कृति सन्निहित है। 'प्रियदर्षिका' में भी विन्ध्यकेतु को मारकर आरण्यका (प्रियदर्षिका) को उसकी कन्या जानकर राजा उसके विवाह सम्बन्धी भार को अपने ऊपर ले लेते हैं।[7] 'नागानन्द' में विष्वावसु मलयवती के विवाहोपरान्त दीपावली के अवसर पर अपनी कन्या और जमाता को भेंट में कुछ देना चाहता हैं। इससे विदित होता है कि कन्या को विवाहोपरान्त भी आदर और सम्मान दिया जाता था।[8] अतः समाज में कन्या के प्रति अत्यधिक स्नेह पूर्ण भावना थी।

श्रीहर्ष ने नारी के पत्नी रूप का भी बड़ा मनोरम तथा उज्जवल रूप प्रदर्षित किया है, उसे पुरुष की अर्धाङ्गिनी माना गया हे। वह अपने पति के प्रेम में इस तरह खोई हुई है कि उसे अपनी जान का भी कुछ ध्यान नहीं रहता। इसी विष्वास से पति भी उसका बड़ा आदर करता है, उसके नाराज होने पर पति पैरों में पड़कर उसे मनाता है क्योंकि उसे विष्वास होता है कि मेरी प्रीति में यदि कोई अन्तर आया तो वह जीती नहीं रह सकेगी।[9] अपनी पीड़ा तथा स्वार्थ को तिलांजलि देकर पति के दुःख से व्यथित होना तथा कठोर अपराधी पति को हृदय से क्षमा कर देना श्रीहर्ष द्वारा निरुपित पत्नीत्व का आदर्ष है।[10] पति का सम्मान करना पत्नियों का सबसे बड़ा धर्म है। 'प्रियदर्षिका' में खिन्न होने पर भी वासवदत्ता पति के आने पर आसन से उठकर उनका आदर करती है।[11] कामदेव की पूजा के अवसर पर पति की पूजा करना पत्नी अपना धर्म समझती है।[12]

स्त्रियों का पतिव्रता धर्म ही उसके जीवन का सर्वस्व होता था। 'नागानन्द' में मलयवती जब जीमूतवाहन को मरा हुआ समझती है तो स्वयं को अग्नि में प्रवेष कर आत्महत्या करने के लिए उद्यत होती है।[13] पति की कठिन अवस्था में पत्नी अपने आप को स्वस्थ नहीं रख पाती थी।[14] इस प्रकार विपत्ति काल में भी पति का साथ न छोड़ने वाली स्त्रियाँ अपने पतिव्रता धर्म का पालन किया करती थी।

श्रीहर्षकालीन समाज में सती प्रथा का प्रचलन था। यही कारण है कि श्रीहर्ष ने अपने तीनों नाटकों में इस तरह का वर्णन किया है। 'प्रियदर्षिका' में बन्धु परिवार समेत विन्ध्यकेतु के मारे जाने पर उनकी स्त्रियों के सती हो जाने का वर्णन किया गया है।[15] 'नागानन्द' में भी पति की मृत्यु की आषंका होने पर पत्नी आत्मदाह करने का विचार करती है।[16]

नारी का माता रुप में भी श्रीहर्ष ने बहुत सुन्दर वर्णन किया है। 'नागानन्द' में जब गरुड़ का आहार बनने की बारी शंखचूड़ की होती है तो उसकी माँ के करुण विलाप को सुनकर नायक भी माता की उस दषा का वर्णन करता है– मूर्च्छित हुई, बहुत विलाप करके आँसुओं की झड़ी लगाती हुई एवं हे पुत्र! तेरा रक्षक कौन है– यह कहकर चारों दिषाओं में दृष्टि दौड़ाती हुई माता की गोद में बैठे हुए इस बालक को निर्दयी होकर खाते हुए गरुड़ की न केवल चोंच ही, प्रत्युत् ह्रदय भी वज्र से बना हुआ प्रतीत होता है।[17] शंखचूड़ भी अपनी माता का भक्त पुत्र है और अन्त में यही कामना करती है– "माताजी! जिस–जिस योनि में मैं जन्म ग्रहण करूँ उस–उस में, हे पुत्र को एकमात्र प्रिय समझने वाली देवी! तुम्ही मेरी माता बनो।"[18] अतः माता का पद पारिवारिक जीवन में अमृत के समान है।

नारी को वधु के रूप में चित्रित किया गया है। 'नागानन्द' में वधु अपने सास ससुर द्वारा वृद्धावस्था में वैराग्य उत्पन्न हो जाने पर तपोवन में चले जाने पर दुःखी होती है।[19] सास–ससुर भी अपनी वधु की प्रषंसा करते हुए अपने को भाग्यषाली मानते हैं।[20] वधू को अपनी पुत्री की भाँति स्नेह दिया जाता है।[21]

समाज में बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी जिससे पत्नियों के बीच आपसी द्वेष तथा संघर्ष होता रहता था। अष्वघोष ने सपत्नी जन्य दुःख का असह्य माना है। उनके अनुसार अपने रूप और गुणों से पति के चित्त का हरण करने वाली सपत्नी के प्रति क्रोध एवं द्वेष का होना अत्यन्त स्वाभाविक है।[22] श्रीहर्षदेव ने अपने नाटकों में अनेक स्थलों पर सपत्नी का वर्णन किया है। यद्यपि स्त्री अपने पति से प्रगाढ़ प्रेम करती है, तथापि उसे यह कदापि सह्य नहीं होता कि कोई दूसरी सुन्दरी उसके पति के प्रेम की अधिकारिणी बने। यही कारण है कि वासवदत्ता की वेषधारिणी आरण्यका के साथ जब मनोरमा के स्थान पर राजा स्वयं अभिनय करते हैं तभी उन्हें सन्देह उत्पन्न हो जाता है और विदूषक के मुख से सारी वास्तविकता जान लेने पर वासवदत्ता आरण्यका को बन्धन में डाल देती है।[23] इसी प्रकार का वर्णन 'रत्नावली' में भी किया गया है।[24] अतः तत्कालीन समाज में सपत्नी की भी प्रथा प्रचलित थी।

श्रीहर्ष के समय में विधवा स्त्रियाँ भी हुआ करती थी। पति की मृत्यु के पश्चात् पत्नी को विधवा रूप में जीवन बिताना पड़ता था। विधवा रूप में जीवन उपेक्षित तथा असह्य माना जाता था और स्त्री उपेक्षित जीवन बिताने की अपेक्षा चिता में जलकर सती हो जाना श्रेष्ठ समझती थी।[25] वैधव्य दुःख को सहन करना किसी भी स्त्री के लिए कठिन होता था।[26]

श्रीहर्ष ने नारी का वेष्या तथा गणिका रूप में भी वर्णन किया है। 'महाभारत' में गर्भवती गान्धारी की देखभाल के लिए एक वेष्या नियुक्त की गई थी।[27] श्रीहर्षविरचित नाटकों में वेष्याओं का उल्लेख किया गया है। वेष्याएं नृत्य संगीत में प्रवीण होती थीं। 'रत्नावली' में विदूषक उनके नृत्य को देखकर कहता है– "मतवाली कामिनियाँ अपने हाथों में पिचकारी लेकर नागर पुरूषों पर रंग डाल रही है और वे पुरूषगण कुतूहल से नाच रहे हैं, चारों ओर बजते हुए डफ और ताली के शब्दों से गालियाँ मुखरित हो रही हैं। उड़ाये गए गुलाल से दष दिषाओं का मुख पीत वर्ण हो रहा है।"[28] वेष्याएँ अपने सौन्दर्य आदि गुणों से पुरूषों को आकर्षित करती थी। अतः हषकालीन समाज में वेष्याओं की भी उपस्थिति हुआ करती थी। इसके अतिरिक्त श्रीहर्ष ने नारी के दासी रूप का उल्लेख भी किया है। श्रीहर्ष के समय में दासियाँ अन्तः पुर में स्त्रियों की सेवा–सुश्रुषा किया करती थीं।[29] ऐसा ही वर्णन श्रीहर्ष ने अपने नाटकों में भी किया है। 'रत्नावली' में चूतलतिका तथा मदनिका दोनों वासवदत्ता की दासी के रूप में कार्य करती है।[30] स्त्रियाँ नृत्यकला तथा संगीतकला में प्रवीण होती थीं।[31] नारी को नारी विषयक षिक्षाएँ दी जाती थीं।[32] स्त्रियाँ प्रायः लज्जाषील होती थीं। लज्जा स्त्रियों का सर्वोतम आभूषण माना जाता है। श्रीहर्ष ने भी अपने नाटकों में नारी को लज्जाषील वर्णित किया है।[33] अतः उपर्युक्त वर्णन से विदित होता है कि श्रीहर्ष के समय नारी का सम्मानपूर्ण स्थान था।

सन्दर्भ

1. वैदिक साहित्य का इतिहास : पृष्ठ 72
2. मनुस्मृति : 3.56
3. वैदिक साहित्य का इतिहास : पृष्ठ 70–71
4. मनुस्मृति : 9.45
5. महाभारत, आदि पर्व : 74.41
6. अभिज्ञानषाकुन्तलम् : 4.21
7. प्रियदर्षिका : पृष्ठ 23, 42
8. नागानन्द : पृष्ठ 124
9. रत्नावली : पृष्ठ 143, 3.15
10. वही : पृष्ठ 149
11. प्रियदर्षिका : पृष्ठ 115
12. रत्नावली : पृष्ठ 46
13. नागानन्द : पृष्ठ 197
14. नागानन्द : पृष्ठ 216
15. प्रियदर्षिका : पृष्ठ 23
16. नागानन्द : पृष्ठ 197
17. वही : पृष्ठ 138–139
18. वही : पृष्ठ 152
19. वही : पृष्ठ 10
20. वही : पृष्ठ 182
21. वही : पृष्ठ 194
22. सौन्दरानन्द : पृष्ठ 6.41
23. प्रियदर्षिका : पृष्ठ 100
24. रत्नावली : पृष्ठ 153
25. प्रियदर्षिका : पृष्ठ 23
26. नागानन्द : पृष्ठ 197
27. वही : पृष्ठ 191
28. महाभारत, आदिपर्व : 114.42–43
29. रत्नावली : पृष्ठ 22
30. वही : पृष्ठ 32
31. वही : पृष्ठ 32
32. नागानन्द : पृष्ठ 34–36, 1.15
33. प्रियदर्षिका : पृष्ठ 23
34. नागानन्द : पृष्ठ 43
35. प्रियदर्षिका : पृष्ठ 58